ज्ञानसङ्कुली तंत्र

7

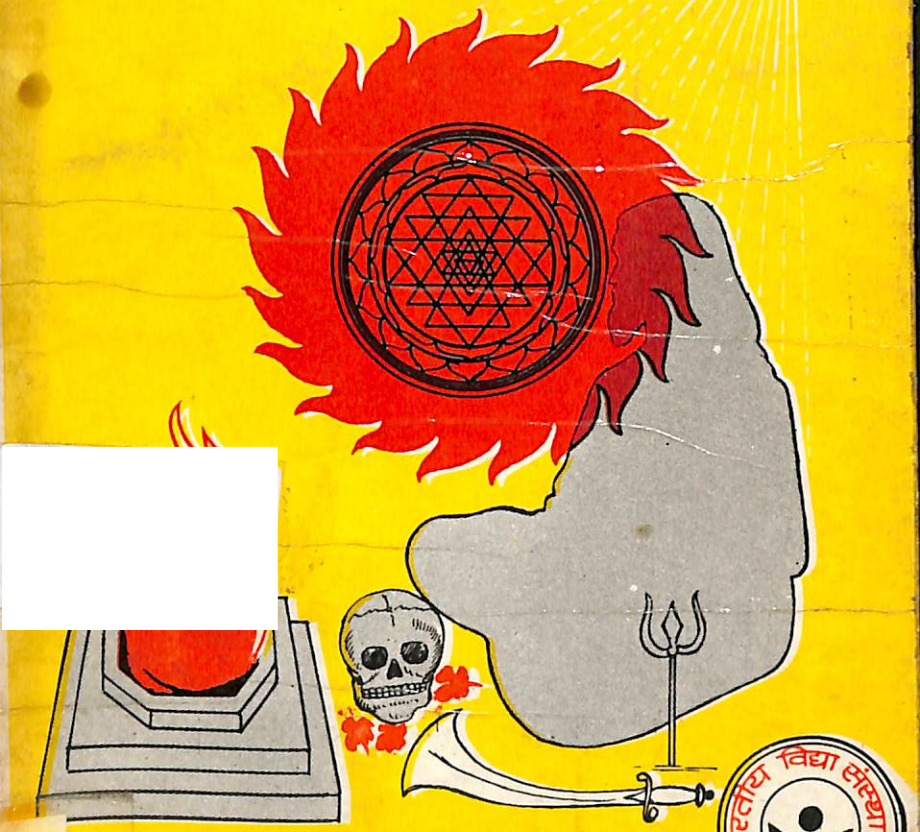

अनुवादक :- एस. एन. खण्डेलवाल

भारतीय विद्या संस्थान
वाराणसी

ज्ञानसंकुली तन्त्रम्

(मूल तथा भाषानुवाद)

अनुवादक
एस. एन. खण्डेलवाल

प्रकाशक
भारतीय विद्या संस्थान
सी. २७/५९ जगतगंज, वाराणसी

प्रकाशक :
भारतीय विद्या संस्थान
प्रकाशक एवं पुस्तक विक्रेता
जगतगंज, वाराणसी–२२१००२

मूल्य : रु० १०/

प्रथमावृत्ति–१९९३ ई०

मुद्रक—
देवपति प्रेस
नईबस्ती, वाराणसी

निवेदन

ज्ञानसंकुली तंत्र लुप्तप्रायः शांभवी तंत्र का एक भाग है। इसकी भी पूर्ण पाण्डुलिपि उपलब्ध नहीं हो सकी है। लुप्तप्रायः शांभवी तन्त्र का नामोल्लेख राजेन्द्रलाल मित्र संग्रहस्थ उत्पत्तितंत्र में प्राप्त होता है। यद्यपि यह तंत्र अपने पूर्ण रूप में शाहजहाँ के समकालिक कवीन्द्राचार्य सरस्वती के संग्रह में उपलब्ध था, परन्तु अब इसका केवल नामोल्लेख पढ़कर ही सन्तोष प्राप्त करना पड़ता है।

ज्ञानसंकुली तन्त्र में महादेव ने उमादेवी को वेदान्तसार सर्वस्व का ज्ञानोपदेश दिया है। इसमें प्रणव प्रशंसा–स्थूल देहादि के लक्षण तथा आत्मयोग प्रतिपादित है। इस तंत्र की पाण्डुलिपि एशियाटिक बंगाल सोसाईटी की ग्रंथसंख्या ६०३५ के रूप में उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त यह ग्रंथ बंग साहित्य परिषद और राजेन्द्रलाल मित्र सूचीपत्र में भी अंकित है। ग्रंथ छुद्रकाय होने पर भी सारतत्व समन्वित होने के कारण स्वाध्याय के लिये अत्यन्त उपादेय प्रतीत होता है।

कुछ वर्ष पूर्व हरिद्वार में चण्डीपर्वत के निकट रहने वाले महात्मा के पास से दक्षिण भारतीय भाषा में एक अनुत्संधित्सु सज्जन को एक अनाम पाण्डुलिपि प्राप्त हुई थी। उस पाण्डुलिपि में जिस संस्कृति भाषा का उपयोग किया गया है, उसकी रूपरेखा पाणिनी से भी पूर्व की प्रतीत होती है। उस ग्रंथ में करीब ७०० श्लोक अंकित हैं। उस ग्रंथ के परिशिष्ट के रूप में ११० श्लोक (सात सौ के अतिरिक्त) अंकित है, जो प्रचलित ज्ञानसंकुली के श्लोकों से मिलते जुलते हैं। प्रतीत होता है कि वह ७०० श्लोकों का ग्रंथ ही शांभवी तंत्र है। वह तंत्र हठयोग, तंत्र तथा राजयोग की त्रयी का अपूर्व रूप प्रस्तुत करता है। उस तंत्र के परिशिष्ट के रूप में जो ११० श्लोक जोड़े गये हैं, उनसे यह सिद्ध हो जाता है कि ज्ञानसंकुलीतन्त्र शांभवी तन्त्र का एक भाग है। उक्त शांभवी तन्त्र के प्रकाशन की भी शीघ्र व्यवस्था की जा रही है।

रामनवमी, १९९३ ई०
बी ३१/३२ लंका, वाराणसी

भवदीय
एस० एन० खण्डेलवाल

ज्ञानसंकुली तंत्र

कैलासशिखरासीनं देवदेव जगद्गुरुम् ।
पृच्छति स्म महादेवी ब्रूहि ज्ञानं महेश्वर ॥१॥

कैलासशिखर पर आसीन जगद्गुरु कैलासपति महादेव देवाधिदेव से महादेवी पार्वती ने जिज्ञासा किया कि हे महेश्वर! ज्ञान किसे कहते हैं ? ॥१॥

देव्युवाच--

कुतः सृष्टिर्भवेद्देव कथं सृष्टिर्विनश्यति ।
ब्रह्मज्ञानं कथं देव सृष्टिसंहारवर्जितम् ॥२॥

देवी ने यह भी जिज्ञासा किया कि हे देव ! यह विश्व सृष्टि कहां से होती है, कैसे इस सृष्टि का विनाश होता है ? जो ब्रह्मज्ञान सृष्टि तथा संहार की प्रक्रिया से रहित है, कृपया उसे कहिये ॥२॥

ईश्वर उवाच—

अव्यक्ताच्च भवेत् सृष्टिरव्यक्ताच्च विनश्यति ।
अव्यक्तं ब्रह्मणो ज्ञानं सृष्टिसंहारवर्जितम् ॥३॥
ॐकारादक्षरात् सर्वात्वेता विद्याश्चतुर्दश ।
मन्त्रपूजा तपो ध्यानं कर्माकर्म तथैव च ॥४॥
षड़ङ्ग वेदचत्वारि मीमांसा न्यायविस्तरः ।
धर्मशास्त्रपुराणादि एता विद्याश्चतुर्दर्दश ॥५॥

ईश्वर कहते हैं—यह सृष्टि अव्यक्त से ही होती है और अव्यक्त से ही इसका विनाश भी सम्पन्न होता है । अव्यक्त ही सृष्टि संहार से रहित ब्रह्मज्ञान है ।

ॐकार से ही १४ विद्या, मन्त्र, पूजा, तप, ध्यान, कर्म, अकर्म का और चारो वेद, षड्वेदाङ्ग, मीमांसा, न्याय, धर्मशास्त्र तथा पुराण—इन चतुर्दश विद्याओं का उदय होता है ॥३-५॥

तावद्विजा भवेत् सर्वा यावद् ज्ञानं न जायते ।
ब्रह्मज्ञानं पदं ज्ञात्वा सर्वविद्या स्थिरा भवेत् ॥६॥

जब तक इन चतुर्दश विद्या का ज्ञान नहीं होता, तब तक ब्रह्मज्ञान नहीं होता। ब्रह्मज्ञान प्राप्त होते ही समस्त विद्यायें स्थिर (तथा दृढ़) हो जाती हैं ॥६॥

वेदशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिका इव ।
या पुनः शाम्भवी विद्या गुप्ता कुलवधूरिव ॥७॥
देहस्थाः सर्वविद्याश्च देहस्थाः सर्वदेवताः ।
देहस्थाः सर्वतीर्थानि गुरुवाक्येन लभ्यते ॥८॥

वेद-शास्त्र-पुराण प्रभृति का ज्ञान सामान्य गणिका स्त्री के समान जहां चाहे तहां उपलब्ध हो जाता है, अतः उन्हें प्रकाशित किया जा सकता है, परन्तु शाभंवी विद्या को उसी प्रकार से गुप्त रखना चाहिये, जैसे कुलवधु गुप्त रहती है। देह में समस्त विद्या, देवता तथा तीर्थ समूह विराजित रहते हैं। देह में ही गुरुवाक्य (श्रद्धा होने से) से इन सब का ज्ञान हो जाता है ॥७–८॥

अध्यात्मविद्या हि नृणां सौख्यमोक्षकरी भवेत् ।
धर्मकर्म तथा जप्यमेतत् सर्वं निवर्त्तते ॥९॥
काष्ठमध्ये यथा वन्हिः पुष्पे गन्धः पयोऽमृतम् ।
देहमध्ये तथा देवः पुण्यपापविवर्जितः ॥१०॥

मनुष्यों को अध्यात्म विद्या ही सुखदायक तथा मोक्षदायक होती है। इसके समान अन्य कोई भी विद्या नहीं है। इसी के साधन से मुक्ति प्राप्त होना संभव है। समस्त धर्मकर्म, जप-तप का निवर्तन (विलीनीकरण) इसी अध्यात्म विद्या में ही होता है।

जैसे काष्ठ में वन्हि (अग्नि) और पुरुष में गन्ध है, जैसे जल में अमृत विद्यमान है, उसी प्रकार देह में पुण्य-पाप रहित परमात्मा का निवास है ॥९-१०॥

इड़ा भगवती गङ्गा पिङ्गला यमुना नदी ।
इड़ापिङ्गलयोर्मध्ये सुषुम्ना च सरस्वती ॥११॥

त्रिवेणी सङ्गमो यत्र तीर्थराजः स उच्यते ।
तत्र स्नानं प्रकुर्वीत सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१२॥

देहस्था इड़ा नाड़ी गंगा है, पिंगला ही यमुना है और इन दोनों के मध्य सुषुम्ना सरस्वतीरूपेण विराजिता है। जहां इन तीनों का संगम होता है, वही देहमध्यबिन्दु त्रिवेणी है। यह तीर्थराज है। इसमें स्नान द्वारा समस्त पापों का क्षय हो जाता है ॥११-१२॥

देव्युवाच—

कीदृशी खेचरी मुद्रा विद्या च शाम्भवी पुनः ।
की दृश्यध्यात्मविद्या च तन्मे ब्रूहि महेश्वर ॥१३॥

देवी कहती हैं—हे महेश्वर ! खेचरी मुद्रा कैसी हैं ? शाम्भवी विद्या किसे कहा जाता है, अध्यात्म विद्या किस प्रकार की है, कृपया उपदेश करिये ॥१३॥

ईश्वर उवाच—

मनः स्थिरं यस्य बिनावलम्बनम्
वायुः स्थिरो यस्य बिना निरोधनम् ।
दृष्टिः स्थिरा यस्य बिनावलोकनम्
सा एव मुद्रा विचरन्ति खेचरी ॥१४॥
बालस्य मूर्खस्य यथैव चेतः
स्वप्नेन हीनोऽपि करोति निद्राम् ।
ततो गतः पथो निरावलम्बः
सा एव विद्या विचरन्ति शाम्भवी ॥१५॥

ईश्वर कहते हैं—जिस मुद्रा के द्वारा बिना किसी आलम्बन (धारणा प्रभृति के अभाव में ही) मन स्थिर हो पाता है, बिना रोके (कुम्भकादि के अभाव में ही) वायु निबद्ध हो जाता है, बिना (त्राटक आदि बाह्य) दर्शन के ही दृष्टि की स्थिरता सम्पादित होती है, उसे खेचरी मुद्रा कहा गया है। जैसे बालक अथवा मूढ़ की चित्त वृत्ति (निद्रित न होने पर भी जाग्रदा-

वस्था में ही) स्वप्न जैसे कल्पनालोक में विचरती रहती है, उसी प्रकार जिस विद्या का आश्रय लेने पर देहस्थ शून्याकाश में बिना अवलम्बन के ही चित्त विचरने लगता है, उसे ही शांभवी विद्या कहते हैं ॥१४–१५॥

देव्युवाच—

देवदेव जगन्नाथ ब्रूहि मे परमेश्वर।
दर्शनानि कथं देव भवन्ति च पृथक् पृथक् ॥१६॥

देवी कहती है—हे देवदेव, जगन्नाथ, परमेश्वर! दर्शन पृथक्-पृथक् क्यों हैं ? ॥१६॥

ईश्वर उवाच—

त्रिदण्डी च भवेद्भक्तो वेदाभ्यासरतः सदा।
प्रकृतिवादरताः शाक्ता बौद्धाः शून्यातिवादिनः ॥१७॥

ईश्वर कहते हैं—जो त्रिदण्डी हैं, वे भगवद् भक्त हैं और सदा वेदाभ्यास में लगे रहते हैं। जो शाक्त हैं वे शक्ति उपासक हैं, वे प्रकृतिवादरत हैं। बौद्धगण शून्यवादी हैं ॥१७॥

अतोर्द्धं गामिनो ये वा तत्त्वज्ञा अपि तादृशाः।
सर्वं नास्तीति चार्वाका जल्पन्ति विषयाश्रिताः ॥१८॥

जो त्रिदण्डी-शाक्त तथा बौद्धमत से उर्ध्व हैं—अतीत हैं, वे ही यथार्थ तत्त्वज्ञ हैं। विषयाश्रयी जड़वादी चार्वाक् मतावलम्बी व्यक्ति ही ईश्वर को स्वीकार नहीं करते ॥१८॥

उमा पृच्छति हे देव ! पिण्डब्रह्माण्डलक्षणम्।
पञ्चभूतं कथं देव गुणाः के पञ्चविंशतिः ॥१९॥

उमा देवी पूछती हैं—हे देव ! पिण्ड ब्रह्माण्ड–पंचभूत का लक्षण क्या है, २५ गुण कैसे होते हैं ? ॥१९॥

ईश्वर उवाच—

अस्थि मांसं नखञ्चैव त्वग्लोमणि च पञ्चमम् ।
पृथ्वीपञ्चगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषते ॥२०॥
शुक्रशोणितमज्जा च मलमूत्रञ्च पञ्चमम् ।
अपां पञ्चगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषते ॥२१॥
निद्राक्षुधातृषा चैव क्लान्तिरालस्यं पञ्चमम् ।
तेजः पञ्चगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषते ॥२२॥
धारणं चालनं क्षेपं सङ्कोचं प्रसरस्तथा ।
वायोः पञ्चगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषते ॥२३॥
कामं क्रोधं तथा मोहं लज्जा लोभञ्च पञ्चमम् ।
नभः पञ्चगुणाः प्रोक्ता ब्रह्मज्ञानेन भाषते ॥२४॥

ईश्वर कहते हैं—अस्थि--मांस--नख--त्वचा--रोम पृथ्वीतत्व के गुण हैं। शुक्र--शोषित--मज्जा--मल--मूत्र को जल का गुण कहा गया है। निद्रा--क्षुधा--तृष्णा--क्रान्ति तथा आलस्य को तेज का गुण कहते हैं! धारण--चालन--क्षेपण संकोचन तथा प्रसारण को वायु का गुण कहा गया है। काम-क्रोध--लोभ--मोह तथा लज्जा प्रभृति आकाश के गुण हैं ॥२०-२४॥

आकाशाज्जायते वायुर्वायोरुत्पद्यते रविः ।
रवेरुत्पद्यते तोयं तोयादुत्पद्यते मही ॥२५॥

आकाश से वायु-वायु से अग्नि-अग्नि से जल तथा जल से पृथ्वी की उत्पत्ति होती है ॥२५॥

मही विलीयते तोये तोयं विलीयते रवौ ।
रविर्विलीयते वायौ वायुर्विलीयते तु खे ॥२६॥

पृथ्वी का लय जल में, जल का लय अग्नि में, अग्नि का लय वायु में तथा वायु का लय आकाश में हो जाता है ॥२६॥

पञ्चतत्वाद् भवेत् सृष्टिस्तत्वात् तत्त्वै विलीयते ।
पञ्चतत्वाद् परं तत्वं तत्त्वातीतं निरञ्जनम् ॥२७॥

पंचतत्त्वों से सृष्टि होती है और तत्त्व में ही तत्त्व विलीन होते हैं (जैसा श्लोक २६ में प्रदर्शित किया गया) इन पंचतत्त्व से अतीत जो तत्त्व है, वह सबसे अतीत है, निरंजन है, तत्वातीत है ॥२७॥

स्पर्शनं रसनं चैव घ्राणं चक्षुश्च श्रोतरम् ।
पञ्चेन्द्रियमिदं तत्त्वं मनः साधन्यमिन्द्रियम् ॥२८॥

स्पर्श, रसास्वादन, सूंघना, देखना तथा सुनना ही पांचो इन्द्रियों का (क्रमशः) पंचतत्त्व है । मन ही समस्त इन्द्रियों का कारण है ॥२८॥

ब्रह्माण्डलक्षणं सर्वं देहमध्ये व्यवस्थितम् ।
साकारश्च विनश्यन्ति निराकारो न नश्यति ॥२९॥

ब्रह्माण्ड के समस्त लक्षण देह में स्थित हैं । इनमें जो साकार है, उसका तो विनाश हो जाता है, परन्तु जो निराकार है, उसका विनाश नहीं होता ॥२९॥

निराकारं मनो यस्य निराकारसमो भवेत् ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन साकारन्तु परित्यजेत् ॥३०॥

जिस व्यक्ति का मन निराकार अवस्था को प्राप्त है, वह निराकार के समान अविनाशी हो जाता है । अतः समस्त प्रयत्नों के द्वारा साकार का त्याग करे ॥३०॥

देव्युवाच—

आदिनाथ मयि ब्रूहि सप्तधातुः कथं भवेत् ।
आत्मा चैवान्तरात्मा च परमात्मा कथं भवेत् ॥३१॥

देवी कहती हैं—हे आदिनाथ ! सप्तधातुओं का रूप क्या है, आत्मा अन्तरात्मा तथा परमात्मा क्या हैं, उसे विशेष रूप से कहने की कृपा करिये ॥३१॥

ईश्वर उवाच—

शुक्रशोणितमज्जा च मेदो मांसञ्च पञ्चमम् ।
अस्थि त्वक् चैव सप्तैते शरीरेषु व्यवस्थिताः ॥३२॥

ईश्वर कहते हैं—शुक्र-रक्त-मज्जा-मेद-मांस-अस्थि-चर्म रूपी सप्त धातु देह में हैं ॥३२॥

शरीरञ्चैवमात्मानमन्तरात्मा मनो भवेत् ।
परमात्मा भवेच्छून्यं मनो यत्र विलीयते ॥३३॥

देह को आत्मा, मन को अन्तरात्मा तथा शून्यमय को परमात्मा कहा जाता है। मन भी इसी शून्यमय आत्मा में प्रविलीन हो जाता है ॥३३॥

रक्तधातुर्भवेन्माता शुक्रधातुर्भवेत् पिता ।
शून्यधातुर्भवेत् प्राणो गर्भपिण्डं प्रजायते ॥३४॥

रक्तधातु माता है। शुक्रधातु पिता है। शून्यधातु प्राण है। इन तीनों के योग से गर्भ पिण्ड बनता है ॥३४॥

देव्युवाच—

कथमुत्पद्यते वाचा कथं वाचा विलीयते ।
वाक्यस्य निर्णयं ब्रूहि पश्य ज्ञानमुदाहर ॥३५॥

देवी कहती हैं—किस प्रकार से वाक् की उत्पत्ति-लय तथा निर्णय होता है ? हे महेश्वर ! कृपया यह कहने की अनुकम्पा करें ॥३५॥

ईश्वर उवाच—

अव्यक्ताज्जायते प्राणः प्राणादुत्पद्यते मनः ।
मनसोत्पद्यते वाचो मनो वाचा विलीयते ॥३६॥

ईश्वर कहते हैं—अव्यक्त से प्राण की उत्पत्ति होती है। उस प्राण से मन और मन से वाणी का उदय होता है। अन्त में वाणी भी मन में विलीन हो जाती है ॥३६॥

देव्युवाच—

कस्मिन् स्थाने वसेत् सूर्यः कस्मिन् स्थाने वसेच्छशि ।
कस्मिन् स्थाने वसेद् वायुः कस्मिन् स्थाने वसेन्मनः ॥३७॥

देवी कहती हैं—सूर्य कहां निवास करते हैं, चन्द्रमा-वायु एवं मन का निवास स्थान कहां है ? ॥३७॥

ईश्वर उवाच—

तालुमूले स्थितश्चन्द्रो नाभिमूले दिवाकरः ।
सूर्याग्रे वसते वायुश्चन्द्राग्रे बसते मनः ॥३८॥

सूर्याग्रे वसते चित्तं चन्द्राग्रे जीवितं प्रिये।
एतद्युक्तं महादेवी गुरुवाक्येन लभ्यते ॥३६॥

ईश्वर कहते हैं— हे महादेवी ! तालुमूल में चन्द्रमा, नाभि में सूर्य का निवास है। वायु का निवास सूर्य के अग्रभाग में तथा मन का निवास चन्द्र के अग्रभाग में है। सूर्य के अग्र में चित्त का और प्राण का निवास चन्द्रमा के अग्र-भाग है। गुरु के उपदेश से ही इनका लाभ सम्यक्रूपेण हो सकता है ॥३८–३९॥

देव्युवाच—

कस्मिन् स्थाने वसेच्छक्तिः कस्मिन् स्थाने वसेच्छिवः।
कस्मिन् स्थाने वसेत् कालो जरा केन प्रजायते ॥४०॥

देवी कहती हैं—शक्ति कहां अवस्थिता हैं, शिव का निवास कहां है, काल का अवस्थान कहां पर है। जरा किसके द्वारा उत्पन्न होती है ? ॥४०॥

ईश्वर उवाच—

पाताले वसते शक्तिर्ब्रह्माण्डे वसते शिवः।
अन्तरिक्षे वसेत् कालो जरा तेन प्रजायते ॥४१॥

ईश्वर कहते हैं—पाताल में शक्ति है, ब्रह्माण्ड में शिव का निवास है। अन्तरिक्ष में काल का वास है। उसी से जरा भी उत्पत्ति होती है ॥४१॥

देव्युवाच—

आहारं काङ्क्षते कोऽसौ भुञ्जते पिवते कथम्।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तौ च को वासौ प्रतिबुध्यति ॥४२॥

देवी कहती हैं—कौन आहार की इच्छा करता है ? कौन भक्षण तथा पान करता है ? जाग्रत्—स्वप्न तथा सुषुप्ति में कौन प्रबुद्ध रहता हैं ? ॥४२॥

ईश्वर उवाच—

आहारं कांङ्क्षते प्राणो भुञ्जतेऽपि हुताशनः।
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तौ च वायुश्च प्रतिबुद्ध्यति ॥४३॥

ईश्वर कहते हैं—प्राणों को आहार की अभिलाषा रहती है। हुताशन भोजन करते हैं। जाग्रत-स्वप्न तथा सुषुप्ति में वायु जाग्रत रहती है ॥४३॥

देव्युवाच—

को वा करोति कर्माणि को वा लिप्यते पातकैः ।
को वा करोति पापानि को वा पापैः प्रमुच्यते ॥४४॥

देवी जिज्ञासा करती हैं—कौन कर्मफल देता है, कौन पापलिप्त होता है, कौन पाप से विमुक्त हो जाता है ॥४४॥

शिव उवाच—

मनः करोति पापानि मनो लिप्यते पातकैः ।
मनश्च तन्मया भूत्वा न पुण्यैं नंच पातकैः ॥४५॥

शिव कहते हैं—मन पाप करता है, वही पापों में लिप्त होता है । जब वह पुण्य-पाप में लिप्त नहीं होता, तब तन्मय हो जाता है । उस समय वह इन दोनों से अतीत है ॥४५॥

देव्युवाच—

जीवः केन प्रकारेण शिवो भावति कस्य च ।
कार्यस्य कारणं ब्रूहि कथं किञ्च प्रसादनम् ॥४६॥

देवी कहती हैं—जीव कैसे शिवत्व प्राप्त करता है ? किस कार्य के कारण को तथा तुष्टिसाधन को इसमें मुख्य समझा जाये ॥४६॥

शिव उवाच—

भ्रान्तिबद्धो भवेज्जीवो भ्रान्तिमुक्तः सदाशिवः ।
कार्यः हि कारणं त्वञ्च पुनर्बोधो विशिष्यते ॥४७॥

शिव कहते हैं—जीव भ्रान्ति से आबद्ध रहता है । जो भ्रान्ति मुक्त है, उसे ही सदाशिव कहते हैं । तुम ही कार्य एवं कारण हो । इसका बोध होना ही श्रेष्ठ कार्य है ॥४७॥

मनोऽन्यत्र शिवोऽन्यत्र शक्तिरन्यत्र मारुतः ।
इदं तीर्थमिदं तीर्थं भ्रमन्ति तामसा जनाः ॥४८॥
आत्मतीर्थं न जानाति कथं मोक्षो वरानने ॥४९॥

मन कहीं है। शिव-शक्ति अन्यत्र है। पवन कहीं और है। तब भी अज्ञानी-गण यह तीर्थ-वह तीर्थ कहकर तीर्थों में दौड़ते हैं। हे वरानने! जिसे आत्मतीर्थ का ज्ञान नहीं है, उसे मुक्ति कैसे मिलेगी? ॥४८-४९॥

न वेदं वेदमित्याहु र्वेदो ब्रह्म सनातनम्।
ब्रह्मविद्यारतो यस्तु स विप्रो वेदपारगः ॥५०॥

केवल कोई ग्रंथ ही वेद नहीं है। सनातन ब्रह्म ही वेद है। जो ब्रह्मविद्या में रत है अथवा ब्रह्मज्ञान की आराधना में लीन है, वही वेद परायण ॥५०॥

मथित्वा चतुरो वेदान् सर्वशास्त्राणि चैव हि।
सारन्तु योगिभिः पीतं तक्रं पिबन्ति पण्डिताः ॥५१॥

चारों वेदों तथा समस्त शास्त्रों का मन्थन करके उसके नवनीत का पान योगीगण करते हैं। पण्डितों को तो केवल उसका तक्र अथवा असार अंश ही मिलता है ॥५१॥

उच्छिष्टं सर्वशास्त्राणि सर्वविद्या मुखे मुखे।
नोच्छिष्टं ब्रह्मणो ज्ञानमव्यक्तं चेतनामयम् ॥५२॥

समस्त शास्त्र उच्छिष्ट हो चुके हैं। समस्त विद्या एक मुख से अन्य मुख में संचार करती है, परन्तु ब्रह्मज्ञान उच्छिष्ट नहीं है। यह अव्यक्त तथा चैतन्यमय है। ॥५२॥

न तपस्तपः इत्याहुर्ब्रह्मचर्यं तपोत्तमम्।
उर्ध्वरेता भवेद् यस्तु स देवो न तु मानुषः ॥५३॥

समस्त तपस्याओं में उत्तम है ब्रह्मचर्य। जो उर्ध्वरेतस् होकर ब्रह्मचर्य में विचारण करते हैं, वे मनुष्य नहीं हैं-देवता हैं ॥५३॥

न ध्यानं ध्यानमित्याहुर्ध्यानं शून्यगतं मनः।
तस्य ध्यानप्रसादेन सौख्यं मोक्षं न संशयः ॥५४॥

साकार रूपादि का ध्यान ध्यान नहीं है। शून्य ध्यान ही यथार्थ ध्यान है। इससे भ्रम भी शून्यगत हो जाता है। इस ध्यान की कृपा से सुख तथा मोक्ष, दोनों ही मिलते हैं ॥५४॥

न होमं होममित्याहुः समाधौ तत्तुभूयते ।
ब्रह्माग्नौ हूयते प्राणं होमकर्म तदुच्यते ॥५५॥

केवल अग्नि में घृत आदि की आहुति ही होम नहीं है। ब्रह्मज्ञानात्मक अग्नि में प्राण घृत की आहुति से ही वास्तविक होमकर्म होता है ॥५५॥

पापकर्म भवेद्भव्यं पुण्यञ्चैव प्रवर्त्तते ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तद्द्रव्यञ्च त्यजेद्बुधः ॥५६॥

पाप कर्म का भविष्य में फल होगा ही। अतः विद्वान व्यक्ति पापकारी विषयों का त्याग करते रहते ॥५६॥

यावद्वर्णं कुलं सर्वं तावज् ज्ञानं न जायते ।
ब्रह्मज्ञानं पदं ज्ञात्वा सर्ववर्णविवर्जितः ॥५७॥

जब तक ज्ञान नहीं हो पाता, तब तक वर्ण भेद रहते हैं। ब्रह्मज्ञान हो जाने पर वर्ण भेद तथा कुल भेद समाप्त हो जाता है ॥५७॥

देव्युवाच—

यत्त्वया कथितं ज्ञानं नाहं जानामि शङ्कर ।
निश्चयं ब्रूहि देवेश मनो यत्र विलीयते ॥५८॥

देवी कहती हैं—हे शंकर ! आपने जिस ज्ञान का वर्णन किया है, उससे तो मैं भी अवगत नहीं हूँ। हे देवेश ! मन का लय कहाँ तथा किस प्रकार से होता है, इसे कहिये ॥५८॥

ईश्वर उवाच—

मनो वाक्यं तथा कर्म तृतीयं यत्र लीयते ।
बिना स्वप्नं यथा निद्रा ब्रह्मज्ञानं तदुच्यते ॥५९॥

ईश्वर कहते हैं—जहाँ मन-वाणी तथा कर्म लय को प्राप्त होते हैं और स्वप्न रहित निद्रा की तरह अवलम्बन रहित स्थिति में जिस ज्ञान का उदय होता है, वही ब्रह्मज्ञान है ॥५९॥

एकाकी निस्पृहः शान्तश्चिन्तानिद्राविवर्जितः
बालभावस्तथा भावो ब्रह्मज्ञानं तदुच्यते ॥६०॥

श्लोकार्धन्तु प्रवक्ष्यामि यदुक्तं तत्वदर्शिभिः
सर्वचिन्तापरित्यागो निश्चिन्तो योग उच्यते ॥६१॥
निमिषं निमिषार्धं वा समाधिमधिगच्छति ।
शतजन्मार्जितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥६२॥

एकाकी—निस्पृह—शान्त—निश्चित—निद्रारहित तथा बालकभावापन्न अवस्था को ब्रह्मज्ञान कहते हैं। तत्वदर्शी विद्वान जिसका उल्लेख करते हैं, उसका मैं आधे श्लोक में वर्णन करता हूँ। (योग की परिभाषा यह है) सर्व चिन्ता परित्याग करके निश्चिन्त होना ही योग है। जो एक अथवा अर्धक्षण पर्यन्त भी समाधि को प्राप्त हो जाते हैं, उनके सैकड़ों जन्मों का पाप भस्म हो जाता है ॥६०-६२॥

देव्युवाच--

कस्य नाम भवेच्छक्तिः कस्य नाम भवेच्छिवः ।
एतन्मे ब्रूहि भो देव पश्चात्ज्ञानं प्रकाशय ॥६३॥

देवी कहती हैं—हे देव ! शक्ति तथा शिव किसका नाम है ? पहले इसे बतला कर तब अन्य ज्ञानोपदेश दीजिये ॥६३॥

ईश्वर उवाच—

चलच्चित्ते वसेच्छक्तिः स्थिरचित्ते वसेच्छिवः ।
स्थिरचित्तो भवेद्देवी सदेहस्थोऽपि सिध्यति ॥६४॥

ईश्वर कहते हैं—हे देवी ! शक्ति चंचलचित्त में निवास करती हैं। स्थिर चित्त में शिव अवस्थित रहते हैं। जो स्थिर चित्त है, वह जीते-जीते सिद्धि प्राप्त करता है ॥६४॥

देव्युवाच—

कस्मिन् स्थाने त्रिधा शक्तिः षट्चक्रञ्च तथैव च ।
एकविंशतिब्रह्माण्ड सप्तपातालमेव च ॥६५॥

देवी कहती हैं—त्रिविध शक्ति तथा षट्चक्र कहां है। २१ ब्रह्माण्ड तथा ७ पातालों की सत्ता कहां पर स्थित है ? ॥६५॥

ईश्वर उवाच—

उर्ध्वशक्तिभवेत् कण्ठः अधः शक्तिर्भवेद् गुदः ।
मध्यशक्तिर्भवेन्नाभिः शक्त्यातीतं निरञ्जनम् ॥६६॥
आधारं गुह्यचक्रन्तु स्वाधिष्ठानञ्च लिङ्गकम् ।
चक्रभेदं मया ख्यातं चक्रातीतं नमो नमः ॥६७॥
कायोर्द्धञ्च ब्रह्मलोकः स्वाधः पातालमेव च ।
उर्ध्वमलमधः शाखं वृक्षाकारं कलेवरम् ॥६८॥

ईश्वर कहते हैं—कंठ में उर्ध्वशक्ति है । गुह्य में अधः शक्ति एवं नाभि में मध्यशक्ति का निवास है । इन तीनों शक्ति से अतीत निरंजन ब्रह्म भ्रूमध्य में अवस्थित रहता है । मूलाधार गुह्यदेश में है । लिंगमूल में स्वाधिष्ठान है । जो समस्त चक्रों से अतीत हैं—उन चक्रातीत निरंजन को नमस्कार ।

ललाट के उर्ध्वभाग को ब्रह्मलोक तथा अधोभाग को पाताल कहा जाता है । उर्ध्वभाग मूल है । अधः भाग शाखा है । इस प्रकार जीव का शरीर वृक्ष के आकार वाला है ॥६६–६८॥

ईश्वर उवाच—

शिव शङ्कर ईशान ब्रूहि मे परमेश्वर ।
दशवायुः कथं देव दशद्वाराणि चैव हि ॥६९॥

देवी कहती हैं—हे शिव ! शङ्कर, ईशान परमेश्वर ! देव ! दशवायु देह में कैसे रहती हैं और दशद्वार क्या हैं ? ॥६९॥

ईश्वर उवाच—

हृदि प्राणः स्थितो वायुरपानो गुदसंस्थितः ।
समानो नाभिदेशे तु उदानः कण्ठमाश्रितः ॥७०॥
व्यानः सर्वगतो देहे सर्वगात्रेषु संस्थितः ।
नाग उर्ध्वगतो वायुः कूर्मस्तीर्थानि संस्थितः ॥७१॥
कृकरः क्षोभिते चैव देवदत्तोऽपि जृम्भणे ।
धनञ्जयो नादघोषे निविशेच्चैव शाम्यति ॥७२॥

एष वायुर्निरालम्बो योगिनां योगसम्मतः।
नवद्वारञ्च प्रत्यक्षं दशमं मनः उच्यते ॥७३॥

ईश्वर कहते हैं—प्राणवायु हृदय में, अपान वायु गुह्य देश में, समान नाभि में तथा उदान कण्ठ में स्थित है। व्यान का स्थान सम्पूर्ण शरीर में है। नाग वायु उर्ध्वस्थ है। कूर्म वायु तीर्थों में स्थित हैं। कृकरवायु क्षोभस्थ है, देवदत्त वायु जृम्भणस्थ है। धनंजय वायु नादघोष में प्रविष्ट होकर साम्य हो जाती है। ये दसों वायु निरालम्ब हैं और देहस्थित हैं। यह योग सम्मत है। दश द्वारों में ९ प्रत्यक्ष हैं। दशम द्वार है मन ॥७०–७३॥

देव्युवाच—

नाड़ीभेदञ्च मे ब्रूहि सर्वगात्रेषु संस्थितम्।
शक्तिः कुण्डलिनी चैव प्रसूता दशनाड़िकाः ॥७४॥

देवी कहते हैं—अब सारे शरीर में अवस्थिता नाड़ियों के सम्बन्ध में कहिये। कुण्डलिनी शक्ति और उससे निर्गत १० नाड़ी समूह का भी वर्णन करिये ॥७४॥

ईश्वर उवाच—

इड़ा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना चोर्द्धगामिनी।
गान्धारी हस्तिजिह्वा च प्रसरा गमनायता ॥७५॥
अलम्बुषा यशा चैव दक्षिणाङ्गे च संस्थिताः।
कुहुश्च शङ्खिनी चैव वामाङ्गे च व्यवस्थिताः ॥७६॥
एतास्यु दशनाड़ीषु नानानाड़ी प्रसूतिका।
द्विसप्ततिसहस्त्राणि शरीरे नाड़िकाः स्मृताः ॥७७॥
एता यो विन्दते योगी स योगी योगलक्षणः।
ज्ञाननाड़ी भवेद्देवी योगिनां सिद्धिदायिनी ॥७८॥

ईश्वर कहते हैं—शरीर में स्थित इड़ा-पिंगला तथा सुषुम्ना नाड़ी उर्ध्व गामिनी हैं। गान्धारी-हस्तिजिह्वा तथा प्रसवा नामक नाड़ीत्रय समस्त देह में

परिव्याप्ता है। अलम्बुषा तथा यशा नाड़ी दाहिने अंग में और कुहू एवं शंखिनी नाड़ी वाम अंग में हैं। शरीर में ७२००० नाड़ियाँ रहती हैं। दसो नाड़ियों से अनेक अन्य नाड़ियाँ भी बहिर्गत होती है। जो योगी इन्हें जानते हैं, वे ही योगवित् हैं। ज्ञाननाड़ी योगीगण को सिद्धि देती है ॥७५-७८॥

देव्युवाच—

भूतनाथ महादेव ब्रूहि में परमेश्वर।
त्रयो देवाः कथं देव त्रयो भावास्त्रयो गुणाः ॥७९॥

देवी कहती हैं—हे भूतनाथ, महादेव, परमेश्वर! तीनों देवता कैसे हैं उनके त्रिविध भाव तथा गुण क्या-क्या हैं, विस्तार पूर्वक कहिये ॥७९॥

ईश्वर उवाच

रजोभाववस्थितो ब्रह्मा सत्त्वभावस्थितो हरिः।
क्रोधभावस्थितो रुद्रस्त्रयो देवास्त्रयो गुणाः ॥८०॥
एकमूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
नानाभावं मनो यस्य-यस्य मुक्तिर्न जायते ॥८१॥
वीर्यरूपी भवेद् ब्रह्मा वायुरूपस्थितो हरिः।
मनोरूपस्थितो रुद्रस्त्रयो देवास्त्रयो गुणाः ॥८२॥
दयाभावस्थितो ब्रह्मा शुद्धभावस्थितो हरिः।
अग्निभावस्थितो रुद्रस्त्रयो देवस्त्रयो गुणाः ॥८३॥

ईश्वर कहते हैं—ब्रह्मा रजोभाव में, विष्णु सत्वभाव में तथा शिव क्रोध भाव में स्थित हैं। सत्व-रजः तथा क्रोध इनका त्रिविध गुण है। ये तीनों देवता एकमूर्ति हैं। जो व्यक्ति इन्हें अलग मानता है, वह मुक्ति नहीं प्राप्त करता। ब्रह्मा वीर्यरूप हैं। हरि वायुरूप हैं और रुद्र मनोरूपेण विद्यमान हैं। दयाभाव में ब्रह्मा, शुद्धभाव में हरि तथा अग्नि भाव में रुद्र का अधिष्ठान रहता है। इन तीनों देवताओं के तीन प्रकार के गुण है। शरीर में तीन देवताओं के तीन प्रकार की अवस्था हेतु गुणत्रय विभक्त रूप से प्रकटित हैं ॥८०-८३॥

एकं भूतं परं ब्रह्म जगत् सर्वचराचरम् ।
नानाभावं मनो यस्य तस्य मुक्तिर्न जायते ॥८४॥

समस्त ब्रह्माण्ड एक परब्रह्म से उत्पन्न है । इस सम्बन्ध में जिसके मन में नाना प्रकार के भावों का उदय होता है, उसे मुक्ति नहीं मिलती । अर्थात् एकात्म भाव से ही मुक्ति मिलती है ॥८४॥

अहं सृष्टिरहं कालोऽप्यहं ब्रह्माप्यहं हरिः ।
अहं रुद्रोऽप्यहं शून्यमहं वापी निरञ्जनम् ॥८५॥
अहं सर्वात्मको देवी निष्कामो गगनोपमः ।
स्वभावनिर्मलं स्वान्तं स एवाहं न संशयः ॥८६॥

हे देवी ! मैं ही सृष्टि, काल, ब्रह्म, हरि, रुद्र, व्योमरूपी शून्यमय तथा सर्वव्यापी तथा निरंजन हूँ । मैं ही सर्वात्मक-निष्काम-निस्पृह तथा गगनोपम हूँ । मैं सीमाहीन स्वभाव निर्मल हूँ । स्वयं में नित्यरुप से अवस्थित रहता हूँ । मैं ही शिव हूँ । ॥८५-८६॥

जितेन्द्रियो भवेच्छूरो ब्रह्मचारी सुपण्डितः ।
सत्यवादी भवेद्भवतो दाता धीरो हिते रतः ॥८७॥

जो व्यक्ति जितेन्द्रिय वीर है, ब्रह्मचारी तथा सुपण्डित है, सत्यवादी, दाता तथा धीर है और सबका हित करने वाला है, वही भक्त है ॥८७॥

ब्रह्मचर्यं तपोमूलं धर्ममूला दया स्मृता ।
तस्मात् सर्वं प्रयत्नेन दयाधर्मं समश्रयेत् ॥८८॥

ब्रह्मचर्य तप का तथा दया ही धर्म का मूल है । अतएव सर्व प्रयत्नों के द्वारा दया धर्म का आश्रय लेना चाहिये ॥८८॥

देव्युवाच—

योगेश्वर जगन्नाथ उमायाः प्राणवल्लभ ।
वेदसन्ध्या तपोध्यानं होमकर्म कुलं कथम् ॥८९॥

देवी कहती हैं—हे योगेश्वर, जगन्नाथ, उमा के प्राणवल्लभ ! अब वेद, संध्या, तपस्या, ध्यान, होम कर्म तथा कुल के सम्बन्ध में कहिये ।८९॥

ईश्वर उवाच—

अश्वमेघसहस्त्राणि वाजपेयशतानि च ।
ब्रह्मज्ञानं समं पुण्यं कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥९०॥
सर्वदा सर्वतीर्थेषु तत् फलं लभते शुचिः ।
ब्रह्मज्ञानं समं पुण्यं कलां नार्हति षोडशीम् ॥९१॥
न मित्रं न च पुत्राश्च न पिता न च बान्धवाः ।
न स्वामी च गुरोस्तुल्यं यदृष्टं परमं पदम् ॥९२॥
न च विद्या गुरोस्तुल्यं न तीर्थं न च देवताः ।
गुरोस्तुल्यं न वै कोऽपि यद्दृष्टं परमं पदम् ॥९३॥

ईश्वर कहते हैं—ब्रह्मज्ञान द्वारा जो पुण्य प्राप्त होता है, हजारों अश्वमेघ तथा सैकड़ों बाजपेय के अनुष्ठान उसका १।१६ भी नहीं है। ब्रह्मज्ञान द्वारा सर्वतीर्थ गमन की तुलना में सोलह गुणित अधिक पुण्य प्राप्त होता है।

जिन गुरु की कृपा से परमपद की प्राप्ति होती है, उनके समान मित्र, पिता, पुत्र, बान्धव, स्वामी, पति कोई भी नहीं है। जिनकी कृपा से परमपद प्राप्त होता है उन गुरु के समान न तो कोई विद्या है, न तीर्थ, देवता आदि ही है ॥९०–९३॥

एकमप्यक्षरं यत्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत् ।
पृथिव्यां नास्ति तद्रव्यं यद्दत्त्वा चानृणी भवेत् ॥९४॥

यदि गुरु द्वारा शिष्य को एक ही अक्षर का मन्त्र मिला है, तब भी पृथ्वी में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो इस ऋण को उतार सके ॥९४॥

यस्य कस्य न दातव्यं ब्रह्मज्ञानं सुगोपितम् ।
यस्य कस्यापि भक्तस्य सद्गुरुस्तस्य दीयते ॥९५॥
मन्त्रपूजातपोध्यानं होमं जप्यं बलिक्रियाम् ।
सन्यासं सर्वकर्माणि लौकिकानि तजेद्बुधः ॥९६॥

ब्रह्मज्ञान अत्यन्त गोपनीय है। इसे हर किसी को देना उचित नहीं है। इसे सद्गुरु द्वारा केवल भक्तशिष्य को देना चाहिये।

मन्त्र-पूजा-तप-ध्यान-होम-जप-बलिकर्म-सन्यास तथा लौकिक कर्मों को बुद्धिमान ब्रह्मज्ञानी त्याग देता है ॥९५-९६॥

संसर्गाद्बहवो दोषाः निःसंङ्गाद्बहवो गुणाः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन यतिः सङ्गं परित्यजेत् ॥९७॥

संसर्ग के अनेक दोष हैं। निःसंग के अनेक गुण हैं। अतः योगो को संग का त्याग करना चाहिये ॥९७॥

अकारः सात्विको ज्ञेय उकारो राजसः स्मृतः।
मकारस्तमसः प्रोक्तस्त्रिभिः प्रकृतिरुच्यते ॥९८॥
अक्षरा प्रकृतिः प्रोक्ता अक्षरः स्वयमीश्वरः।
ईश्वरान्निर्गता सा हि प्रकृतिर्गुणबन्धना ॥९९॥
सा माया पालिनी शक्तिः सृष्टि संहारकारिणी।
अविद्या मोहिनी या सा शब्दरूपा यशस्विनी ॥१००॥

'अ' सत्वगुणमय है। 'उ' को रजोगुणमय कहते हैं। 'म' तमोगुणमय है। इन तीनों का समाहार है प्रकृति। अक्षर ही प्रकृति है और अक्षर ही ईश्वर है। ईश्वर से प्रकृति बहिर्गता होती है। यह प्रकृति सत्वादि गुणों से युक्त है। माया ही सृष्टि-स्थिति-संहारकारिणी हैं। यही है अविद्या-मोहिनी तथा शब्दरूपा यशस्विनी देवी ॥९८-१००॥

अकारश्चैव ऋग्वेद उकारो यजुरुच्यते।
मकारः सामवेदस्तु त्रिषु युक्तोऽप्यथर्वणः ॥१०१॥

अ = ऋग्वेद, उ = यजुर्वेद, म = सामवेद। तीनों का मिलित रूप अथर्ववेद है ॥१०१॥

ॐकारस्तु प्लुतो ज्ञेयस्त्रिनाद इति संज्ञितः।
अकारस्त्वथ भूर्लोकः उकारो भुवः उच्यते ॥१०२॥

सव्यञ्जनमकारस्तु स्वर्लोकस्तु विधीयते ।
अक्षरैस्त्रिभिरेतैश्च भवेदात्मा व्यवस्थितः ॥१०३॥

प्लुतस्वर युक्त ॐकार ही त्रिनाद है । 'अ' कार = पृथ्वी भूर्लोक । उ = भुवर्लोक । 'म' कार = स्वर्लोक । शास्त्र में इन अक्षरत्रय द्वारा आत्मा प्रतिभात होता है ॥१०२–१०३॥

अकारः पृथिवी ज्ञेया पीतवर्णेन संयुतः ।
अन्तरिक्षं उकारस्तु विद्युद्वर्ण इहोच्यते ॥१०४॥
मकारः स्वरिति ज्ञेयः शुक्लवर्णेन संयुतः ।
ध्रुवमेकाक्षरं ब्रह्म ओमित्येवं व्यवस्थितम् ॥१०५॥

'अ' कार = पृथ्वी-पीतवर्ण । 'उ' कार = अन्तरिक्ष, विद्युत वर्ण । म = स्वर्लोक-शुक्लवर्ण । एकाक्षर ॐ ही ब्रह्म है ॥१०४–१०५॥

स्थिरासनो भवेन्नित्यं चिन्तानिद्राविवर्जितः ।
आशु स जायते योगी नान्यथा शिवभाषितम् ॥१०६॥

चिन्ता तथा निद्रा का त्याग करके नित्य ही स्थिर आसन में बैठने से शीघ्र योगीपद प्राप्त होता है । यह निःसंदिग्ध है । यह है शिव की उक्ति ॥१०६॥

य इदं पठते नित्यं शृणोति च दिने दिने ।
सर्वपापविशुद्धात्मा शिवलोकं स गच्छति ॥१०७॥

जो इस ब्रह्मविषयक उपदेश को नित्य सुनता है, वह समस्त पापों से मुक्त होकर शिवलोक प्राप्त करता है ॥१०७॥

देव्युवाच—

स्थूलस्य लक्षणं ब्रूहि कथं मनो विलीयते ।
परमार्थञ्च निर्वाणं स्थूलसूक्ष्मस्य लक्षणम् ॥१०८॥

शिव उवाच—

येन ज्ञानेन हे देवी विद्यते न च किल्विषी ।
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च ॥१०९॥
स्थूलरूपी स्थितोऽयञ्च सूक्ष्मश्च अन्यथा स्थितः ॥११०॥

देवी कहती हैं—सूक्ष्मस्थूल देह का लक्षण कैसा है, मन कैसे लयीभूत होता है ? परमार्थ का तथा निर्वाण का लक्षण भी कहिये ॥१०८॥

शिव कहते हैं—हे देवी ! जिस ज्ञान से पाप दूर होता है वह कहता हूँ। पृथ्वी, जल, तेज, वायु आकाश से उत्पन्न देह स्थूल है, किन्तु सूक्ष्म देह अन्य प्रकार का होता है ॥१०९–११०॥

॥ इति ज्ञानसंकुली तन्त्रम् समाप्तम् ॥

। ज्ञानसंकुली तन्त्र समाप्त ।

3.1